वैदिक व्याख्यान माला - तेरहवाँ व्याख्यान

प्रजापति संस्थाद्वारा
राज्यशासन

लेखक

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

अध्यक्ष- स्वाध्याय-मण्डल, साहित्यवाचस्पति, गीतालंकार

स्वाध्याय-मंडल, पारडी (जि. सूरत)

मूल्य छः आने

ॐ

प्रजापति संस्थाद्वारा राज्यशासन

वैदिक समयमें राज्यशासनोंके अनेक प्रकार थे। उनमें 'प्रजापति' नामक जो राज्यशासन था, वह महत्त्वपूर्ण था। इस राज्यशासनमें प्रजाके अधिकार अधिक थे। राष्ट्रपतिको राज्यशासकके स्थानपर नियुक्त करना, अथवा नियुक्त हुए प्रजापालकको अन्यायय राज्यपद्धतिका अवलंबन करनेपर राज्यगद्दीपरसे हटाना, और दूसरे राष्ट्रपालको राष्ट्रपर स्थापन करना, यह अधिकार उस समय प्रजाको था और प्रजा इस अधिकारका उपयोग कर भी सकती थी।

यहां यह समझना चाहिये कि, प्रजा कर सकती थी, इसका अर्थ प्रजाके प्रतिनिधि यह सब करते थे। जनताका यह कार्य नहीं था। इस विषयमें हम इस लेखके अन्तमें विशेष विचार करेंगे।

प्रजा और प्रजापति

यहां 'प्रजा' और 'प्रजापति' ये दो विभाग हैं। इनमें मुख्य कौन है और गौण कौन है, इसका निर्णय करना चाहिये। प्रजापति अर्थात् शासकके न होनेपर भी प्रजा रह सकती है और रहती भी है। परंतु राजा, शासक, राष्ट्रपति अथवा प्रजापति प्रजाके रहनेपर ही आ सकते हैं। प्रजा न होनेपर शासककी आवश्यकता ही क्या है? इसलिये 'प्रजा' स्वयंभू है और 'प्रजापति' प्रजापर सर्वथा अवलंबित है। यह बात हरकोई जान सकता है। इसलिये 'प्रजापति संस्थाके राज्यशासन' में प्रजाका अधिकार विशेष होता था यह योग्य ही है।

व्यक्ति और संघ

प्रजाका सर्वाधिकार है, ऐसा माननेपर भी व्यक्तिका क्या अधिकार है और संघका क्या अधिकार है, इसका विचार करनेकी आवश्यकता रहती है। संघ अमर है और व्यक्ति मरनेवाली है यह बात सब जानते हैं। हिंदुसमाज या आर्यसमाज अमर है, जैसा वह दो हजार वर्ष पूर्व था, वैसा ही आज है और भविष्यमें भी रहेगा। पर हिंदुसमाजकी प्रत्येक व्यक्ति मरेगी ही। व्यक्तिकी आयु सौ, सवासौ या डेढसौ वर्ष होती है। कोई व्यक्ति कुछ अधिक भी जीवित रहेगी, पर व्यक्ति अमर नहीं रह सकती। इसलिये कहा है—

संभूत्या अमृतमश्नुते। वा. य. ४०।११; ईश० ११

'(संभूत्या) संघभावसे (अमृतत्वं) अमरत्व (अश्नुते) प्राप्त होता है।' व्यक्तिभावका नाम ही इस अध्यायमें 'विनाश' लिखा है। व्यक्तिभाव जहां प्रबल है और जहां संघभावकी प्रबलता नहीं है, वहां उस मानव समुदायका विनाश ही होगा। वैसा बिखरा आपसकी फूट रखनेवाला समाज भी विनष्ट हो जायगा। अर्थात् सर्वात्मभावको अपने अन्दर जाग्रत रखनेवाला समाज उन्नत और अमर हो सकता है। समाजमें संघटन चाहिये और वह संघटन जीवित और जाग्रत चाहिये। केवल कुछ व्यक्तियां इकट्ठी रहनेसे समाज बनेगा, परंतु वह जीवित और जाग्रत तथा उन्नतिशील नहीं बनेगा। वेद ऐसे जाग्रत उन्नतिशील समाजको 'संभूती' नामसे पुकार रहा है। (सं इति एकीभूय) एक होकर, संघटित बनकर, एक ध्येयकी ओर जानेकी प्रेरणासे, मिलकर जो (भूतिः) ऐश्वर्यमय अभ्युदय प्राप्त करनेके लिये उद्यमशील संघटना होती है, उसका नाम 'संभूती' है। यह संघटना जीवित भी रहती है, जाग्रत रहती है और अभ्युदयको भी प्राप्त करती है। यही संभूति अमर होती है।

जगत्यां जगत्। वा. य. ४०।१; ईश १

'हलचल करनेवाली एक व्यक्तिको 'जगत्' कहते हैं। (गछति इति जगत्) जो हलचल करता है वह व्यक्ति जगत् कहलाता है। इस तरह अनेक हलचल करनेवाली व्यक्तियाँ इकट्ठी हुई, संघटित हुई तो उस संघका नाम 'जगती' होता है। 'जगत्' और 'जगती' को ही 'व्यक्ति और समष्टी' अथवा 'व्यक्ति और समाज' कहते

हैं। (जगत्यां) समष्टीके आधारसे (जगत्) व्यक्ति रहती है। समाजके आधारसे एक व्यक्ति रहती है। मनुष्य उत्पन्न होते ही पराधीन रहता है। दूसरोंके द्वारा उसका प्रतिपालन होना चाहिये। घरमें माता, पिता, भाई बहिन आदि जो रहते हैं, वे इस बालकका पालन करते हैं। घरमें कोई न रहे तो उस बालकका पालन समाज करता है, अथवा राष्ट्रशासन द्वारा उसका पालन होता है। १५।२० वर्ष तक समाजद्वारा पालन होकर जब यह तरुण तैयार होता है तब इस मनुष्यको कुछ स्वातंत्र्य प्राप्त होता है।

समाजकी सेवाका धर्म

स्वातंत्र्य प्राप्त होनेपर, सामर्थ्ययुक्त तरुण होनेपर भी व्यक्ति मरनेवाली ही रहती है और सहस्रों बातोंमें वह समाजपर अवलंबित होती है। इसीलिये समाज श्रेष्ठ है, आदरणीय है और संसेव्य है। समाजकी सेवा इसी कारण व्यक्तिको करनी चाहिये। यही व्यक्तिका धर्म है। जिस कारण समाजपर व्यक्ति आश्रित रहती है, इसी कारण व्यक्तिको अपना तन मन धन अर्पण करके समाजकी सेवा करनी चाहिये। जो व्यक्ति समाज सेवा नहीं करेगी, वह अपने धर्मसे, अपने कर्त्तव्यसे, भ्रष्ट होगी।

'अंग अंगीकी भलाईके लिये अपना समर्पण करे' यह नियम है। शरीरमें देखिये प्रत्येक इंद्रिय सब शरीरकी भलाईके लिये अपनी शक्ति लगाता है। इस कारण सब शरीर स्वस्थ रहता है। आंख देखता है तो वह सब शरीरकी भलाईके लिये देखे, मुख खाता है तो वह अन्न ऐसा खाये कि जिससे सब शरीर स्वस्थ रहे। इसी तरह अन्यान्य इंद्रियां भी अपने अपने कार्य सब शरीरकी भलाईके लिये ही करते रहें। इसीसे सब शरीर स्वस्थ, बलवान् और दीर्घजीवी रह सकता है। मुखने बुरा खाद्य खाया या विषरूप पेय पीया, अथवा पेटने अन्नको पचानेका कार्य नहीं किया तो शरीर रोगी होकर नष्ट हो जायगा। जबतक प्रत्येक अंग और अवयव सब शरीरकी भलाईके लिये अपनी शक्ति लगाता है, तब तक ही शरीर स्वस्थ रहता है, और शरीरमें निजानन्दकी अनुभूति होती है। तात्पर्य यह है कि 'अंगको अंगीकी भलाईके लिये आत्मसमर्पण करना चाहिये।' दुष्टोंके संघमें भी जो एकात्मता दुष्ट भावसे होती है, वही आत्मीयता ज्ञानियोंको शुभभावनासे अपने समाजके अभ्युदयके लिये करनी चाहिये।

समाज अंगी है और व्यक्ति उसका अंग है। इसीलिये व्यक्तिको समाजके अभ्युदय-निःश्रेयसकी सिद्धिके लिये, समाजको सुसंघटित और बलवान बनानेके लिये अपनी सेवाका समर्पण करना चाहिये। ज्ञानी लोग अपने ज्ञानके प्रचारसे, शूरवीर अपने संरक्षणके सामर्थ्यसे, धनी व्यापारी अपने धनसे, वाणिज्य व्यवहारसे अथवा कृषिकर्मसे तथा कर्मचारी अपने कर्मसे राष्ट्रका अभ्युदय सिद्ध करनेका प्रयत्न करे। अपनी शक्तिको राष्ट्रदेवके लिये समर्पित करे। इसका कारण यही है कि समाज वा राष्ट्रने इस व्यक्तिका रक्षण, पालन तथा पोषण किया है। इसका ऋण व्यक्तिपर है। इस ऋणको उतारनेके लिये व्यक्तिकी सेवा समाज पुरुषकी प्रीतिके लिये समर्पण होनी चाहिये।

इस तरह व्यक्तिका कर्तव्य नियत हुआ। और समाजका भी कर्तव्य इसीसे नियत हुआ। समाज व्यक्तिको सुरक्षित रखे, उन्नत करे और व्यक्ति अपनी शक्तिको समाजकी भलाईके लिये समर्पित करे। सब प्रकारका मानवधर्म इसमें आगया है। यही यज्ञ है। यही यज्ञ समाजको सुस्थितिमें रखता है।

व्यक्तिकी सब शक्तियां समाजके कल्याणके लिये जो आवश्यक सेवा हो उसमें लगनी चाहिये, इसमें व्यक्तिका धन भी आगया है। व्यक्ति अपने पास धन रखे, पर वह समाजका विश्वस्त निधि करके रखे। आवश्यकता होनेपर वह धन समाजके कल्याणके लिये लगे। क्योंकि धन समाजका है, राष्ट्रका है व्यक्तिका नहीं है। वह उसको समर्पित होना चाहिये।

इसीका नाम यज्ञ है। इसीलिये कहा है कि यज्ञके लिये सबका धन है। यह सब होनेके लिये उत्तम शासन व्यवस्था चाहिये, वह शासन व्यवस्था प्रजाके लिये अनुकूल चाहिये, प्रजाके हितके लिये चाहिये, वह प्रजाकी संमति द्वारा बनायी होनी चाहिये। ऐसी शासन संस्था **'प्रजापति संस्था'** नामसे वेदोंमें प्रशंसित हुई है। इसका स्वरूप इस निबंधमें देखना है।

समाजमें एक समय ऐसा आता है कि जिस समय सब प्रजा ज्ञानी, प्रबुद्ध, कर्तृत्व शक्तिसे युक्त, अनुशासनशील

होती है। ऐसी प्रजा स्वयंशासित होती है। किसीका दुष्ट शासन वह कदापि नहीं मानती। ऐसी प्रजा अपना शासन स्वयं निर्माण करती है, इसलिये कहा है कि 'काल ही प्रजा और प्रजापतिको निर्माण करता है। देखिये—

कालद्वारा प्रजापतिका निर्माण

कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजापतेः।
कालः प्रजा असृजत कालो अग्रे प्रजापतिम् ॥

अथर्व १९।५३।८-१०

'काल प्रजा उत्पन्न करता है, काल प्रजाजनोंके पालन कर्ताको उत्पन्न करता है, इस कारण काल प्रजापालकक पिता है और वह काल ही सबका शासक है।'

समय पर प्रजा उन्नत होती है, प्रजा उन्नत होनेपर उनके पालनकर्ताको वह चुनती है और शासकके स्थानपर उसको बिठलाती है। इस तरह काल ही सब करता है। प्रजा ज्ञान विज्ञान संपन्न होती है, तब वह अपने शासकके स्थानके लिये प्रजापालक संस्थाका निर्माण करती है और स्वयं ही अपना राज्यशासन किस तरह होना चाहिये, इसका निर्णय करती है, और वैसा शासन तथा उसके योग्य शासक निर्माण करती है और वैसा राज्यशासन चलाती है। राज्यशासनके प्रत्येक अधिकारीके लिये कैसे पुरुष चाहिये वैसे चुने जाते हैं और वैसे सुयोग्य पुरुषोंको अधिकारके स्थान दिये जाते हैं इस हेतुसे कहा है—

प्रजा अधीयन्त प्रजापतिरधिपतिरासीत्।

वा. य. १४।२८

'प्रजा उत्पन्न हुई, पश्चात् उनका शासक प्रजापति हुआ।' प्रथम प्रजा होती है, वह कुछ अनुभव लेती है, शासकके विना कार्य ठीक नहीं हो सकता इसका अनुभव प्राप्त होता है, पश्चात् वह शासकका निर्माण करनेका प्रयत्न करती है। इसमें अनेक प्रकारके राज्यशासन उत्पन्न होते हैं। छोटे मोटे क्षेत्रोंमें विविध प्रकारके शासन चलते हैं, अनेक अनुभव लिये जाते हैं। राज्य, महाराज्य, साम्राज्य, जानराज्य आदि अनेक शासनतंत्र बनते हैं। और 'प्रजापति संस्था' की निर्मिती होती है। इसमें प्रत्येक अधिकारके स्थानके लिये उत्तमसे उत्तम सुयोग्य मनुष्य चुना जाता है और उसको वह अधिकारका स्थान दिया जाता है। इस विषयमें निम्नलिखित मंत्र देखने योग्य है—

प्रजापालककी अद्वितीयता

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रणीयाम् ॥ प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परि ता बभूव।

ऋ. १०।१२१।१०; अथर्व. ७।८०।३; वा. य. १०।२० तै. सं. १।८।१४।२; ३।२।५।६; तै. ब्रा. २।८।१।२; ३।५।७।१; निरु. १०।४३

"हे (प्रजापते) प्रजापालक! (त्वत् अन्यः न) तेरेसे भिन्न दूसरा कोई ऐसा नहीं है कि जो (एतानि विश्वा जातानि) इन सारी प्रजाओंको (परि बभूव) घेर सके। (यत्कामाः ते जुहुमः) जिस ऐश्वर्यकी इच्छासे हम यज्ञ कर रहे हैं (तत् नः अस्तु) वह हमारी कामना सफल बने और (वयं रयीणां पतयः स्याम) हम सब धनोंके स्वामी; बनें।"

राष्ट्रपति ऐसा बनाया जाय कि जिससे अधिक बलवान और योग्य कोई दूसरा न हो। सब प्रजाजनोंके मनोंको आदरभावसे व्यापनेवाला जो हो वही प्रजापालक बने। सबको घेरकर रहनेकी शक्ति जिसमें हो, वही राष्ट्रपतिके स्थानपर नियुक्त किया जावे। वह राष्ट्रपति बनकर सबका ऐश्वर्य बढावे।

'वयं स्याम पतयो रयीणां' हम सब ऐश्वर्यके स्वामी बनें। प्रजाके पास धन ऐश्वर्य तथा सुखके साधन बढें यह प्रजाकी इच्छा होती है। सुख आनंद और शान्ति सबको चाहिये। इसीलिये तो राज्यशासन चलाना है। राज्यशासनका उद्देश्य दुःख निर्माण करनेका नहीं हो सकता, परंतु सुख आनन्द और शान्ति प्राप्त हो यही हो सकता है। इसलिये राष्ट्रशासनका प्रत्येक अधिकारी ऐसा होना चाहिये कि जो इस कार्यके लिये उत्तमसे उत्तम हो। 'तेरेसे भिन्न दूसरा कोई इस कार्यको करनेके लिये योग्य नहीं है।' इस लिये तुमको इस कार्य करनेके स्थानपर नियुक्त किया है। (त्वत् अन्यः न) तेरेसे भिन्न दूसरा कोई नहीं है, तू ही इस कार्यके लिये सर्वथा सुयोग्य हो, इसलिये तेरी नियुक्ति

इस कार्यके लिये हम कर रहे हैं। राष्ट्रमें राष्ट्रपति, मंत्री, सेनापति, सेनाधिकारी, शिक्षक, संरक्षक आदि अनेक कार्यकर्ता आवश्यक होते हैं। जिस कार्यके लिये जैसा अधिकारी चाहिये वैसा चुनना चाहिये यह इसका तात्पर्य है। (यत्कामाः ते जुहुमः तत् नः अस्तु) जिस कामनाकी सिद्धिके हेतुसे शासन व्यवस्थाके लिये हम कर रूपसे धनादि देते हैं, वह सुख आनंद और शांति हमें प्राप्त हो और हम (रयीणां पतयः वयं स्याम) ऐश्वर्य संपन्न हों, ऐसा राज्यशासन बने इसलिये हमारा यह प्रयत्न हो। ऐसी व्यवस्था निर्माण होनेके लिये कैसे अधिकारी चाहिये इसका वर्णन करनेवाला यह मंत्र है—

अधिकारी ब्रह्मचारी हों

आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः।
प्रजापतिर्विराजति विराडिन्द्रोऽभवद्वशी ॥
अथर्व ११।५।१६

राज्यशासनके अधिकारी ब्रह्मचर्य पालन किये हुए हों। (आचार्यः) शिक्षक वर्ग भी ब्रह्मचारी हों और (प्रजापतिः) प्रजापालनका कार्य करनेवाले भी ब्रह्मचारी ही हों। अर्थात् ब्रह्मचर्यपालनपूर्वक गुरुकुलवासमें रहकर विद्याध्ययन किये हुए सत्त्वशील चारित्र्यसंपन्न पुरुष शासनाधिकारी हों। ऐसे (प्रजापतिः) प्रजापालक होनेपर वे (वि राजति) विशेष शोभते हैं, विशेष प्रशंसित होते हैं। (विराट् वशी) इस तरहके प्रजापालक अधिकारी जब संयमी होते हैं, तब उनको इन्द्र कहते, अर्थात् शासनके मुख्य अधिकार में रहने योग्य माने जाते हैं।

यह कितना आदर्श शासन यहां कहा है कि जिसमें विद्या पढानेवाले और शासन और रक्षण करनेवाले ये दोनों प्रकारके अधिकारी ब्रह्मचारी हों। गुरुकुलमें रहकर विद्याध्ययन किये हुए हों। ब्रह्मचर्य पालन करके अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शुचिता, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरभक्तिका जिन्होंने अनुष्ठान किया है ऐसे अधिकारी जहां राज्यशासनके कार्यमें नियुक्त हुए हों। वहांका राज्यशासन कितना उत्तम हो सकता है, इसकी कल्पना पाठक अपने मनमें कर सकते हैं। जो अहिंसा पालन करते हैं, सत्य मानते, सत्य बोलते और सत्याचरण करते हैं, जो चोरी नहीं करते, जो विवाह पूर्व ब्रह्मचर्य पालन करके ऊर्ध्वरेता बने हैं और विवाह करनेपर भी जो ऋतुगामी रहकर गृहस्थधर्ममें पालन करने योग्य नियम पालन करते हैं, जो परिग्रह वृत्ती नहीं धारण करते, परंतु अपरिग्रह वृत्तीसे रहते हैं, जो विचार उच्चार आचारमें पवित्र हैं, जो संतोष वृत्तीके हैं, जो धर्माचरण और अपना कर्म करनेमें होनेवाले कष्ट आनंदसे सहते और अपना कर्म उत्तम करते हैं, जो नित्य नियमसे स्वाध्याय करते हैं और जो ईश्वरकी भक्ति करते हैं। इस तरहके इंद्रियसंयम, मनोनिग्रह और शमदमके अभ्यासी राष्ट्रशासनके अधिकारी हों।

शिक्षा विभाग, न्यायविभाग, संरक्षण विभाग और युद्ध विभागके अधिकारी इसी तरह संयमशील हों और हिंसाप्रिय और घातपात करनेवाले न हों। पर जहां जितना शत्रुदमनके लिये कार्य करना आवश्यक हो वहां उतना कर्त्तव्य समझ कर करें। सदा घातपात करते न रहें।

इस तरहके शासनाधिकारी होंगे तो आदर्श राज्यशासन हो सकता है। अधिकारी कैसे हों इस विषयमें देखिये—

शासनाधिकारीके गुण और कर्म

धाता मित्रः प्रजापतिः। अथर्व ११।९।२५
अश्विनोभा प्रजापतिः प्रजया वर्धयन्तु ॥
अथर्व १४।२।१३
शं प्रजापतिः। अथर्व १९।९।६

'प्रजापालक प्रजाके साथ मित्र जैसा आचरण करे और प्रजाका (धाता) धारण पोषण करे। (शं) प्रजापालक प्रजाका सब प्रकारसे कल्याण करे। अश्विदेव अर्थात् वैद्य और प्रजापालक प्रजाके ऐश्वर्यको बढा देवें।' अर्थात् शासन ऐसा हो कि जिससे प्रजाको शान्ति मिले, प्रजाका पोषण हो, रक्षण हो और प्रजाका ऐश्वर्य बढता जाय।

(प्रजापतिः प्रजया) प्रजाके शासन करनेवाले अधिकारी प्रजाके साथ मिलजुलकर रहें, उनके साथ मित्र जैसा आचार व्यवहार करता है वैसा व्यवहार करें, (धाता) प्रजाका धारण, संघटन और पोषण हो ऐसी शासनव्यवस्था हो। प्रजाजनोंमें (शं) शान्ति रहे, गुण्डेलोग उपद्रव न मचावें ऐसा सुप्रबंध करें।

प्रजापतिर्निधिपतिर्नः ॥ अथर्व ७।१८।४
सत्यधर्मा प्रजापतिः ॥ अथर्व ७।२५।१

"सत्य धर्मका पालन करनेवाला प्रजाओंका पालक राजा हो और ऐसा राष्ट्रपति हमारे धनोंका रक्षक हो।" (निधिपतिः) धनोंका रक्षक सत्यधर्मा हो, असत्य व्यवहार करनेवाला न हो। यहां राष्ट्रपतिके दो कर्तव्य बताये हैं। (१) राष्ट्रपति सत्यका पालक हो और (२) वह प्रजाके धनोंका संरक्षक हो।

'सत्य-धर्मा' अर्थात् जो शासनके नियम, विधानके नियम हैं, उनका पालन करनेवाले शासनाधिकारी हों। सत्य विचार, सत्यभाषण और सत्य आचार करनेवाले अधिकारी हों, असन्मार्गमें कभी न जांय। बुरे कर्म न करें और गुण्डोंको सहाय्य न करें। प्रजाजनोंके धनका (निधि-पतिः) संरक्षण करनेवाले अधिकारी हों। धनीके धनका रक्षण करें और प्रजाके ऐश्वर्यका पालन करें। ऐसे शासन कार्यमें नियुक्त अधिकारी हों।

प्रजापतिः निधिपा देवः। वा० य० ८।१७
प्रजापतिर्वृषा असि। वा० य० ८।१०

'प्रजा पालक (वृषा) बलशाली हो और वह प्रजाजनोंके ऐश्वर्योंका संरक्षण करनेवाला हो।' (वृषा) बलवान्, वीर्यवान् होनेका अर्थ यह है कि, शासन करनेवालेके अन्दर शासन कार्य करनेके लिये जितना बल चाहिये उतना बल उसमें हो, वह अपना कार्य-अपना कर्तव्य करनेमें असमर्थ न हो, निर्बल न हो। अधिकारी जिस अधिकारके स्थानपर रखा होगा, उस स्थानके कार्य यथायोग्य करनेमें वह तत्पर हो, उसके कर्तव्यमें विघ्न करनेवाले कोई उत्पन्न हुए तो उनको दूर करके अपना कर्तव्य कर्म उत्तम रीतिसे निभानेवाला वह अधिकारी हो।

ऐसे अधिकारी ही (निधि-पः) प्रजाजनोंके ऐश्वर्यका उत्तम रीतिसे संरक्षण कर सकते हैं। पहरेदारके पासके शस्त्रोंकी ही चोरी हो जाय, ऐसे पहरेदार न हों, यह तात्पर्य इस मंत्रका है। प्रजापालकके और कर्तव्य अब देखिये—

इन्दुरिन्द्रो वृषा हरिः पवमानः प्रजापतिः।
ऋ० ९।५।९

प्रजापति स्वयं (पवमानः) पवित्र बने और पवित्रता चारों ओर करे, (हरिः हरति दुःखं) प्रजाजनोंके दुःखोंको दूर करे, और उनको सुख देवे। (वृषा) प्रजापति बलवान बने, कभी निर्बल न बने। अपना बल बढाकर शत्रुको दूर करे और प्रजाको निर्भय बनावे। (इन्द्रः इन् शत्रून् विदारयति) प्रजापालक शत्रुओंका विदारण करे, उनको छिन्न भिन्न करे और शत्रुओंको दूर करे। तथा प्रजापालक (इन्दुः उनात्ति क्लेदयति) प्रजा जनोंको शान्ति दे, अर्थात् अशान्ति दूर करे। प्रजाको ऐश्वर्ययुक्त करे, आनन्द प्रसन्न रखे।

१ वृषा—प्राजपालक बलवान बने,
२ इन्द्रः—परम ऐश्वर्यवान बने, शत्रुओंको अपनी शक्तिसे दूर करे, शत्रुको छिन्न भिन्न करे।
३ हरिः—प्रजाके दुःखोंको दूर करें,
४ पवमानः—स्वयं पवित्र रहे और प्रजाको पवित्र मार्गपर चलावे,
५ इन्दुः—प्रजाको शान्ति और प्रसन्नता देवे,
६ प्रजापतिः—प्रजाका पालन करके प्रजाको निर्भय करे और सुखी करे।

प्रजाका पालन करनेके कार्यमें जो नियुक्त होते हैं उनमें ये गुण और ये कर्म होने चाहिये।

न्यायदान

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः।
अश्रद्धामनृतेऽदधात् श्रद्धां सत्ये प्रजापतिः॥
वा० य० १९।७७

'प्रजापालकने सत्य और असत्य ये दोनों रूप देखे और उनका निर्णय उसने किया। असत्यपर उन्होंने श्रद्धा नहीं रखी, परंतु सत्यपर ही श्रद्धा रखी।' अर्थात् सत्यका पक्ष उसने लिया और असत्यको दूर किया, दण्ड दिया।

सत्य और असत्य ये दो पक्ष रहते हैं और इन दो पक्षों में विवाद होता है। इस विवादका निर्णय शासनव्यवस्था द्वारा होना चाहिये। प्रजापालक सत्यासत्यका निर्णय करनेके कार्यके लिये एक 'न्यायाधीश' नामक चतुर तथा विधिज्ञ अधिकारी नियुक्त करता है। इसके सामने सत्य और असत्य ये दोनों पक्ष आते हैं। कौनसा पक्ष सत्य है और कौनसा असत्य है इसका निर्णय यह अधिकारी करता है। सत्यपर श्रद्धा और असत्य पर अश्रद्धा रखता है। अर्थात् सत्यको राजमान्यता देता है और असत्यके प्रतिकूल वह रहता है। इस तरह प्रजाको न्यायदान देनेका कार्य

प्रजापालक करता है। अब कोश व्यवस्थाके संबंधमें देखिये--

राष्ट्रके कोषाध्यक्ष

उपोहश्च समूहश्च क्षत्तारौ ते प्रजापते ।
ताविहा वहतां स्फातिं बहु भूमानमक्षितम् ॥

अथर्व ३।२४।७

हे (प्रजापते) प्रजापालक ! (उपोहः समूहः च) धन लानेवाला और संग्रह करनेवाला ये दोनों (ते क्षत्तारौ) कोषाध्यक्ष हैं। ये दोनों (तौ इह) यहां (बहुं भूमानं) बहुत विशाल (अक्षितं स्फातिं आवहतां) अक्षय संपत्ति लावें।

' उप-ऊहः '—धनादिको पास लानेका विचार करनेवाला। ' सं-ऊहः '—मिलकर विचार करनेवाला अथवा धनको इकट्ठा करनेवाला। एक धन लानेवाला और दूसरा उस धनको जमा करनेवाला ये दो राष्ट्रपालकके अधिकारी हैं। ' क्षत्ता '—कुशल कारीगर, सुतार, लकडीका काम करनेवाला, अधिकारी, द्वारपाल, रक्षक, सारथी, रथी वीर, कोषका अध्यक्ष। राष्ट्रपालने राष्ट्रमें रखे ये धनरक्षक अधिकारी इस राष्ट्रमें ऐश्वर्यकी बहुत समृद्धि लावें और राष्ट्रको धनधान्यसंपन्न बना देवें। ' क्षत्ता ' कारीगर है। ' उपोह ' प्रजासे कर वसूल करनेवाला है और ' समूह ' सब लाया धन इकट्ठा करके खजानेमें रखनेवाला है। ये अधिकारी राष्ट्रकी समृद्धि बढावें।

राष्ट्रपति राष्ट्रमें बल बढावे

प्रजापते वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्यामधि ॥

अथर्व ९।१।१०

' हे (प्रजापते) राष्ट्रपालक ! तू (भूम्यां अधि) मातृभूमिमें अपने (शुष्मं) प्रभावी बलको (वृषा क्षिपसि) अपने पूरे बलसे फेंकता है, बढाता है। ' प्रजापालक प्रजाकी ऐसी पालना करता है कि जिससे प्रजाजनोंमें बलकी वृद्धि होती रहती है।

राष्ट्रपति अपने प्रजापालनकी पद्धतिसे राष्ट्रके प्रजाजनोंमें बलकी वृद्धि करे। बल अनेक प्रकारका होता है, ज्ञानबल, वीरताका बल, धनबल, कर्मबल, कृषिबल, वन्य वनस्पतियोंका बल, भूमिमें मिलनेवाला खनिज पदार्थोंका बल, प्रजाकी संघटनासे होनेवाला बल, ऐसे सैकडों प्रकारके बल होते हैं। ये सब बल प्रजामें बढने चाहिये।

मेघ प्रजापति है वह अपना वृष्टि जलरूप बल भूमिमें फेंकता है। इस बलको भूमि और वृक्षवनस्पतियाँ अपने अन्दर धारण करती हैं और उस बलसे बढती हैं, फल फूल वाली होकर प्रजाको आनंद देती हैं। इस तरह राष्ट्रशासक प्रजाजनोंको अपना शासनका बल देवें और प्रजाका बल बढावें। उत्तम राज्यशासनसे प्रजा भी सामर्थ्यशालिनी होती है।

तेज यश और अन्न प्रजाजनोंको मिले

मयि वर्चो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत्पयः ।
तन्मयि प्रजापतिर्दिवि द्यामिव दृंहतु ॥

अथर्व ६।६९।१

' तेज, यश और यज्ञसे प्राप्त होनेवाला दूध आदि खाद्यपेय अर्थात् अन्न, जैसा द्युलोकमें तेज ईश्वर बढाता है वैसा, प्रजापालक मुझमें बढा देवे। ' अर्थात् मैं तेजस्वी बनूं, मैं बलवान् बनूं, यशस्वी बनूं और अन्नदान द्वारा यज्ञ करूं और उससे खान पानके लिये अन्नको बढाऊं; यह मेरी इच्छा है। हमारे राष्ट्रका पालक अपने राष्ट्रशासनके सुप्रबंधसे ऐसी व्यवस्था करे कि जिससे मेरी यह इच्छा सफल हो।

प्रजाजनोंमें ऐसी इच्छा होनी चाहिये कि ' मैं बल, तेज, यश और अन्न प्राप्त करके आनन्दयुक्त बनूं। और अपने इस सामर्थ्यसे अन्य प्रजाजनोंको सामर्थ्यवान बनाऊं। ' राष्ट्रपति अपने शासनके सुप्रबंधसे प्रजाजनोंमें ऐसी सदिच्छा निर्माण करे, प्रजाजनोंमें उत्पन्न हुई यह सदिच्छा बढती जाय और सब प्रजा तेजस्विनी, यशस्विनी और बलशालिनी बन कर पर्याप्त खानपान प्राप्त करके आनंद प्रसन्न हो जाय।

मातृभूमिको उपजाऊ बनाना

त्वमस्यावपनी जनानामदितिः कामदुघा प
प्रथाना। यत्त ऊनं तत्त आपूरयाति प्रजापतिः
प्रथमजा ऋतस्य ॥ अथर्व १२।१।६१

हे मातृभूमि ! (त्वं जनानां आवपनी) तू इस राष्ट्रकी बीज बोने योग्य भूमि है, (अदितिः कामदुघा) अन्न देने-

वाली कामधेनु जैसी (प प्रथाना) यशस्विनी फैली हुई भूमि जैसी तू है। (ऋतस्य प्रथमजा प्रजापतिः) सत्य नियमोंका पहिलेसे पालन करनेवाला प्रजापालक (यत् वै न्यूनं) जो तुझमें न्यून है, उसको (तत् ते आपूरयाति) वह परिपूर्ण करता है, तुझमें कुछ भी और कहीं भी न्यून रहने नहीं देता।

अर्थात् भूमिकी उपजाऊ शक्तिमें जो जहां न्यून है उस को प्रजापालक खाद आदि देकर, तथा अन्यान्य आयोजनाएं करके भूमिकी उपजाऊ शक्ति बढ़ा देता है। भूमिमें रहनेवाले जितने लोग होंगे, उनके लिये भरपूर अन्नकी उपज अपनी भूमिमें ही होनी चाहिये। धान्यके लिये दूसरे देशपर अवलंबित रहनेकी दुरवस्था प्राप्त न हो, ऐसी सुव्यवस्था प्रजापालकको अपने राष्ट्रमें करनी चाहिये। खान पानके लिये देश स्वावलंबी रहना चाहिये। यह उपदेश यहां है।

मातृभूमिपरका अन्न प्रजाजनोंको मिले

यत्ते अन्नं भुवस्पत आक्षियति पृथिवीमनु।
तस्य नस्त्वं भुवस्पते सं प्रयच्छ प्रजापते॥

अथर्व १०।५।४५

'हे (भुवः पते प्रजापते) मातृभूमिके पालक और हे प्रजाजनोंके पालक! (यत् अन्नं) जो अन्न (पृथिवीं अनु आक्षियति) हमारी मातृभूमिपर रहता है, (तस्य) उस अन्नका विभाग (त्वं नः सं प्रयच्छ) तू हम सबको योग्य रीतिसे प्रदान कर।' अर्थात् हमारी मातृभूमि पर जो अन्न उत्पन्न होता है, वह प्रथम हमें मिले ऐसा शासन प्रबंध कर। हमारे लिये जितना चाहिये उतना मिलने पर, जो बचेगा, उसका उपयोग तू योग्य रीतिसे कर। पर प्रथम हम सब प्रजाजनोंके खानेके लिये यह मिलना चाहिये और वह भी सब प्रजाजनोंको योग्य विभागमें बंट कर मिलना चाहिये। प्रजाजन भूखे मरते रहें और अन्न बाह्यदेशमें जाता रहे ऐसा कदापि नहीं होना चाहिये। माताका दूध प्रथम उस माताकी संतानको मिलना चाहिये, और उसका पेट भरनेपर अन्यके संतानोंको माता चाहिये तो देवे। पर प्रथम पुत्रका अधिकार माताके दूधपर है। यही नियम मातृभूमिसे उत्पन्न हुए धान्यके विषयमें है।

*

तैंतीस अधिकारियोंका अन्नसे पोषण

एतस्मात् वा ओदनात् यत्रास्त्रिंशतं लोकान् निरमिमीत प्रजापतिः। अथर्व ११।३।५२

'इस अन्नसे (प्रजापतिः) प्रजा पालकने तैंतीस लोकोंको (निरमिमीत) निर्माण किया है।' आधिदैवतमें विश्वमें सूर्य चन्द्रादि तैंतीस देवगण विश्वका संचालन करनेके कार्यमें नियुक्त किये हैं। अधिभूतमें राष्ट्र संचालनके लिये तैंतीस अधिकारी गण प्रजापतिने नियुक्त किये हैं। अध्यात्ममें शरीरमें नेत्र कर्ण नासिकादि तैंतीस शक्तियां, अर्थात् देवतांश, शरीरके संचालनमें लगे हैं। तीनों स्थानोंके नियम एक ही हैं।

यहां हमें राष्ट्र संचालनका ही विचार करना है। इसलिये प्रजापालक राष्ट्रपतिने तैंतीस अधिकारीगण राष्ट्रसंचालनके तैंतीस कार्यालयोंपर नियुक्त किये हैं और उनको (ओदनात्) अन्न-खाद्यपेय-योग्य प्रमाणमें मिले ऐसा प्रबंध किया है।

विश्वके तैंतीस देवोंको यज्ञसे अन्नभाग मिलता है, शरीरान्तर्गत इन्द्रियगणोंको खाये अन्नमेंसे भाग मिलता है और राष्ट्रसंचालक अधिकारी गणोंको राष्ट्रमें उत्पन्न होनेवाले अन्नका योग्य भाग और कर रूपसे आनेवाले धनमेंसे वेतन रूपसे मिलता हैं। अर्थात् ओदनसे अन्नसे तैंतीस देवोंका पोषण होता है, यह तीनों स्थानोंमें समान रीतिसे सत्य है। इसी ओदनसे तैंतीस देवोंका निर्माण होता है।

यहां यह बताया है कि राष्ट्रमें जो अन्न है, उससे जैसा प्रजाजनोंका पोषण होना चाहिये, वैसा ही राष्ट्रके शासनका कार्य करनेवाले अधिकारियोंका और राष्ट्रीय स्वयंसेवकोंका भी पोषण होना चाहिये। यदि अधिकारियोंके पोषणकी उपेक्षा हुई तो उनसे राष्ट्ररक्षणका कार्य यथायोग्य रीतिसे नहीं हो सकता। यदि स्वयंसेवकोंकी उपेक्षा हुई तो वे अपना सेवाका कार्य ठीक तरह नहीं कर सकेंगे। ऐसा होनेपर राष्ट्र रक्षण नहीं होगा और प्रजाजनोंके कष्ट बढ जांयगे। इसलिये राष्ट्रपतिका यह कर्तव्य है कि वह अपने राष्ट्रमें प्रजाका पालन करनेका कार्य करें, इस कार्यके करनेका सामर्थ्य आनेके लिये राष्ट्रशासनके कार्यमें नियुक्त हुए अधिकारियोंका भी यथायोग्य पालन पोषण होना चाहिये। अर्थात् उनको पर्याप्त वेतन मिलना चाहिये।

यहां 'ओदन' पद है। 'ओदन' का अर्थ 'पके चावल' है। और पके चावलोंसे सब ३३ देवताएं हुई ऐसा कहा है। यह अलंकारका वर्णन है। ये ३३ देव विश्वके अधिकारी हैं, वैसे ही राष्ट्रके ३३ अधिकारी हैं और शरीरमें भी ३३ दैवी अंश हैं। ये सब अन्नसे कार्य करते हैं। यह आलंकारिक वर्णन है। इससे राष्ट्रकी व्यवस्था मननपूर्वक जाननी चाहिये।

राष्ट्रपति प्रजाजनोंके लिये घर बनावे

प्रजायै चक्रे त्वा शाले परमेष्ठी प्रजापतिः।
अथर्व ९।३।११

'हे (शाले) घर! (परमे-ष्ठी प्रजापतिः) उच्च आसन पर विराजनेवाले राष्ट्रपतिने (प्रजायै त्वा चक्रे) प्रजाजनोंका हित करनेके लिये तुझे-इस घरको-बनाया है।'

अर्थात् राष्ट्रपति अपने शासन प्रबंधसे प्रजाजनोंके रहनेके लिये राष्ट्रमें घर बनावे। जिनमें जाकर प्रजाजन रहें। जो धनी अपने रहनेके लिये घर बना सकते हैं वे अपने लिये घर बनावें और उनमें रहें। पर जो लोग अपने धनसे अपने रहनेके लिये घर नहीं बना सकते, उनके लिये राष्ट्रके शासक शासनप्रबंधसे घर बना देवें और वे उनमें जाकर रहें।

साधु, संन्यासी, उपदेशक, परिव्राजक, तथा अन्य कम धनवाले लोग अपने लिये घर नहीं बना सकते। ऐसे लोगोंको रहनेके लिये घर शासनप्रबंधसे बनाये जांय, यह इस मंत्रका भाव है। राष्ट्रमें कोई मनुष्य घरके विना न रहे। सब प्रजाजनोंको रहनेके लिये घर मिलें यह प्रबंध शासन संस्थाद्वारा होना चाहिये।

जनहितके लिये जलस्थानकी स्थापना

अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये॥
अथर्व १०।५।७-१४

'हे दिव्य जलो! (अस्मासु वर्चः धत्त) हम सबमें तेजस्तिताकी धारणा करो। (अपां शुक्रं) जलोंसे बल आकर हमारे अन्दर रहे। (प्रजापतेः धाम्ना) राष्ट्रपतिके धामके नियमोंसे (अस्मै लोकाय) इस जनताकी सुख प्राप्तिके लिये (वः सादये) आप जलोंको मैं यहां स्थापन करता हूं।'

राष्ट्रपतिके स्थानसे आज्ञापत्र निकले और उसमें कथित नियमोंके अनुसार लोगोंके हितके लिये जलोंका उपयोग हो ऐसा प्रबंध किया जाय। कूएं, तालाब, नहर आदि बनाकर जलोंका उपयोग जनताको हो ऐसी व्यवस्था की जाय। राष्ट्रमें राष्ट्रपतिकी आज्ञानुसार जलके प्रबंध योग्य रीतिसे किये जांय।

जलोंमें रोगनिवारण करनेका गुण है। "आपो विश्वस्य भेषजीः, आपो अमीवचातनीः।" (ऋ०)

जल सब रोगोंकी औषधी है। इस कारण जलमें एक तरहकी शक्ति है। वह प्रजाजनोंको प्राप्त हो इसलिये जनताको उत्तम जल जितना चाहिये उतना मिले।

मातृभूमिको रमणीय बना दो

यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्या विकुर्वते।
प्रजापतिः पृथिवीं विश्वगर्भां
आशामाशां रण्यां नः कृणोतु।
अथर्व० १२।१।४३

"जिस मातृभूमिके अन्दरके (पुरः देवकृतः) नगर देवताओंके द्वारा बनाये हैं, जिस मातृभूमिके (क्षेत्रे विकुर्वते) अनेक लोग विविध प्रकारके कार्य करते रहते हैं, वह हमारी मातृभूमि (विश्व-गर्भा) अनेक वस्तुओंको अपने गर्भमें धारण करती है। प्रजापालक राष्ट्रपति उस हमारी मातृभूमिको (आशां आशां) प्रत्येक दिशामें (नः रण्यां कृणोतु) हमारे लिये रमणीय बनावे।"

मातृभूमिमें प्रजाजन जहां चले जांय वहां उनके लिये मातृभूमि रमणीय है ऐसा आनन्द उनके अनुभवमें आजाय। चारों ओर रमणीयता हो। चारों ओर सुन्दर उद्यान, उपवन, पुष्पवाटिकाएं, जलके निर्झर, तथा अन्य प्रकारकी रमणीयता बनायी जाय। जिनको देखकर लोग आनन्दित और प्रसन्न हो जांय। सर्वत्र मार्ग निष्कंटक और अरेणु हों, मार्गमें भी जलस्थान हों। तात्पर्य सर्वत्र राष्ट्रभरमें रमणीयता रहे। राज प्रबंधके द्वारा चारों ओर रमणीय स्थान बनाये जांय।

व्यापार व्यवहारके लिये पर्याप्त धन और उसमें रुची

येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः। तन्मे भूयो भवतु मा कनीयोऽग्ने सातघ्नो देवान् हविषा निषेध॥ ५॥

तस्मिन् म इन्द्रो रुचिमदधातु प्रजापतिः
सविता सोमो अग्निः ॥ ६ ॥ अथर्व० ३।१५।५-६

'हे देवो ! (धनेन धनं इच्छमानः) अपने पासका धन लगाकर व्यापार व्यवहारसे अधिक धन प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाला मैं (येन धनेन प्रपणं चरामि) जिस मूल धनसे व्यापार व्यवहार करनेकी इच्छा करता हूँ, (तत् मे भूयः भवतु) वह धन मेरे व्यापार व्यवहारके लिये जितना चाहिये उतना पर्याप्त होवे, और कभी (मा कनीयः) कम न होवे। हे (अग्ने) मार्गदर्शक तेजस्वी प्रभो ! (सात-घ्नः देवान्) लाभकी हानि करनेवाले कुव्यवहार कर्ताओंको दूर करो। वे हमारे पास न रहें और हमारे व्यवहारमें रहकर हमें हानि न पहुंचावें। जो व्यवहार मैं कर रहा हूं उस (तस्मिन्) व्यापार व्यवहारमें प्रभु (मे रुचिं आ दधातु) मेरी रुची लगावे, मेरा मन उस धंदेमें लगे ऐसा करे। (सोमः) चन्द्रमाके समान शान्त, (अग्निः) अग्निके समान प्रकाश करनेवाला (सविता) सबको प्रेरणा देने-वाला (प्रजापतिः) प्रजाजनोंका पालक शासन-कर्ता व्यापार व्यवहार करनेवालोंके लिये व्यापार व्यवहारमें रुची बढावे। और हानि करनेवालोंको दूर करे।

राष्ट्रका ऐश्वर्य बढानेके लिये राष्ट्रमें छोटे मोटे कारखाने और कारोबार होने चाहिये और बढने चाहिये। राष्ट्रमें बेकारोंकी संख्या बढनी नहीं चाहिये। प्रत्येक मनुष्यके लिये काम और जो कार्य करेगा उसको उस कार्यके बदले में योग्य दाम मिलना चाहिये। यह सब तब हो सकता है कि जब राष्ट्रमें व्यापार व्यवहार उत्तम रीतिसे चलते रहेंगे। इसलिये राष्ट्रशासकोंपर यह भार है कि उसके शासन क्षेत्रमें व्यापार व्यवहार उचित रीतिसे चल रहे हैं या नहीं इसका निरीक्षण वे करें।

जहां काम धंदे चलते हैं वहां मूल धन पर्याप्त प्रमाण में लगा है वा नहीं, उन धन्दोंमें विघ्न उत्पन्न करनेवाले वहां घुसे हैं वा वे क्या कर रहे हैं ? उन धंदेवालोंका क्रय विक्रय ठीक रीतिसे होकर उनको लाभ हो रहा है वा हानि हो रही है। इत्यादि बातोंकी जांच शासक प्रबंधसे होनी योग्य है। और शासकोंके प्रयत्नसे ऐसा प्रबंध होना चाहिये कि ये कामधंदे राष्ट्रमें बढें, उनको लाभ हो, उनसे जनताका लाभ हो, राष्ट्रका धन तथा सुख बढे। उनको उपद्रव देनेवाले उत्पाती लोग उनसे दूर रहें, उनके कार्यमें विघ्न करनेवालोंको योग्य दण्ड मिले। प्रजापालकोंका यह कर्तव्य इन मंत्रोंमें वर्णन किया है।

प्रजाके साथ मिलकर रहनेमें आनन्द

तानग्रे प्रमुमोक्तु देवः प्रजापतिः प्रजया
संरराणः। वा० य० ८।३६; ३२।५; अथर्व २।३४।४

'प्रजाके साथ मिलकर रहनेमें आनन्द माननेवाला प्रजाका पालनकर्ता राजा अथवा शासनकर्ता (तान् अग्रे) उन प्रजाजनोंको (अग्रे) सबसे प्रथम (प्रमुमोक्तु) प्रति-बंधसे मुक्त करें।' प्रजाजनोंको अपना कर्तव्य उत्तम रीतिसे करनेका स्वातंत्र्य देवे। (प्रजया संरराणः) प्रजाके साथ मिलजुल कर रहनेमें आनन्द माननेवाला शासना-धिकारी हो। शासक अपने आपको प्रजासे पृथक् न समझे, वह प्रजासे पृथक् और दूर रहनेमें आनंद न माने। वह प्रजाके साथ रहे, प्रजाजनोंमें मिले, उनके सुख दुःखोंको जाने और प्रजाजनोंमें मिलकर रहनेमें आनन्द माने।

इसी तरह वह शासनकर्ता प्रजाजनोंको स्वातंत्र्य देकर उनको अपनी उन्नतिके कार्य करनेके लिये प्रतिबंध न करे प्रत्युत प्रजाजनोंको आगे बढावे। वे आगे बढकर अपनी उन्नतिके कार्य करते रहें ऐसा शासनका सुप्रबंध करे। राज्य शासक भी प्रजामेंसे ही होते हैं, इसलिये उनको प्रजाजनों-मेंसे पृथक् मानना अयोग्य है। परदेशी शासक ऐसा मानते हैं। उससे विरोध खडा होता है। परंतु अपने देश-के शासकोंको ऐसा पृथग्भाव मानना उचित नहीं है।

उदेजतु प्रजापतिर्वृषा शुक्रेण वाजिना।
अथर्व ४।४।२

'(वृषा प्रजापतिः) बलवान प्रजापालक-राष्ट्रपति-(शुक्रेण वाजिना) शक्तिशाली सामर्थ्यसे (उत् एजतु) तुम सब प्रजाजनोंको ऊपर उठावे।' अर्थात् उन्नत करे, अभ्युदयके पास ले जावे।

प्रजापालक अपने सामर्थ्यसे, अपने चातुर्यसे और प्रभावसे प्रजाजनोंको ऊपर उठावे। मनुष्यका जन्म अभ्युदय और निःश्रेयस प्राप्त करनेके लिये ही हुआ है। समाज और राष्ट्रका भी उद्देश्य अभ्युदय और निःश्रेयस प्राप्त करना है। केवल अभ्युदय हुआ तो कार्य नहीं समाप्त होता। निःश्रेयस भी अवश्य प्राप्त होना चाहिये। इस

मंत्रमें 'उदेजतु' (उत्-एजतु) पद विशेष महत्त्वका है, ऊपर उठनेका भाव इसमें हैं। ऊपर उठनेका अर्थ ही अभ्युदय और निःश्रेयस प्राप्त करना है।

प्रजापालक प्रजाके साथ मिलजुलकर रहे और उनकी प्रवृत्ति ऊपर उठनेकी है या नहीं यह देखे। और ऐसा प्रबंध करे कि वे ठीक मार्गसे ऊपर उठें।

परस्पर ध्यान देना

प्रजापतिरेव तत् प्रजाभ्यः प्रादुर्भवति। प्रजापतेऽनु मा बुध्यस्व। अन्वेनं प्रजा अनु प्रजापतिर्बुध्यते। अथर्व ९।१।२४

'(प्रजापतिः एव) प्रजाका पालनकर्ता ही (प्रजाभ्यः प्रादुर्भवति) प्रजाजनोंके हितके लिये प्रकट होता है, बाहर आकर कार्य करता है। हे (प्रजापते) प्रजाके पालक! (मा अनुबुध्यस्व) मेरी ओर ध्यान दे, (प्रजाः एनं अनु) प्रजाजन इस प्रजापालककी ओर ध्यान दें और (प्रजापतिः प्रजाः अनुबुध्यते) प्रजापालक प्रजाजनोंकी ओर ध्यान दें।

राष्ट्रपति प्रजाजनोंमें आकर विराजे, प्रजाजनोंके साथ मिलकर रहनेमें आनन्द मानें। वह राष्ट्रपति प्रत्येक प्रजाजनकी परिस्थितिको जाने, प्रत्येक प्रजाजन राष्ट्रपालककी ओर प्रेमसे देखे और प्रजापालक सब प्रजाजनोंका उत्तम निरीक्षण करें। इस तरह राष्ट्रपालक सब अधिकारी और प्रजाजन परस्पर सहानुभूतिसे रहें, बर्तें, मिलजुलकर उन्नति करें। परस्पर सहानुभूतिके साथ रहें, दूसरेकी बातें ध्यानसे सुनें, विचारें और उसकी सहायतार्थ जो हो सकता है करें। परस्पर सहानुभूतिसे ही सबका कल्याण होता है।

प्रजापति द्वारा नगरीका निर्माण

प्रजापतिः प्रजाभिरुदक्रामत्, तां पुरं प्रणयामि वः। तामाविशत, तां प्रविशत, सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु॥ अथर्व १९।१९।११

'(प्रजापतिः प्रजाभिः उदक्रामत्) प्रजापालक प्रजाजनोंके साथ उत्क्रान्त हुआ, ऊपर उठा, उन्नतिको प्राप्त हुआ। उसके द्वारा बसाये (तां पुरं वः प्रणयामि) उस प्रसिद्ध नगरके प्रति तुम्हें मैं ले जाता हूं, तुम (तां आविशत) उस नगरीमें जाकर बसो, (तां प्रविशत) उस नगरीमें प्रवेश करो, (सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु) वह नगरी तुम्हें शान्ति और संरक्षण देवे। उस नगरीमें आनन्दसे रहो।'

राष्ट्रपति नये नगर बसावे, वहां सुरक्षाका प्रबंध करे, लोग वहां जाकर बसें और शान्ति सुख प्राप्त करें। आनंदसे रहें। नगरियां प्राकारोंसे परिवेष्टित हों। शत्रुके आक्रमण सहजहीसे न हों, ऐसा नगररक्षाका प्रबंध हो। सब द्वार सुरक्षित हों। नगर सुरक्षित हुए तो अन्दरके प्रजाजन आनंदसे अन्दर रह सकते हैं और अपना अभ्युदय और निःश्रेयसका साधन कर सकते हैं।

भुवनका धारण करनेवाला

...धर्ता भुवनस्य प्रजापतिः। ऋ० ४।५३।२

'भुवनका धारण करनेवाला प्रजापति है।' अर्थात् जो प्रजापालन करनेके कार्यमें नियुक्त होता है, उसका कार्य यह है कि वह पृथिवीका धारण पोषण करे। धारण पोषण करनेका अर्थ यह है कि वह राष्ट्रका शत्रुसे संरक्षण करे, शत्रुको अन्दर घुसने न दे। प्रजाको निर्भय करे और प्रजाकी उन्नतिके साधन करनेके लिये राष्ट्रमें सुयोग्य परिस्थिति निर्माण करें।

प्रजापतिने भुवनका धारण करना चाहिये। राष्ट्रको आधार देना चाहिये। राज्यशासनका आधार या आश्रय मिला तो राष्ट्रमें अभ्युदयके कार्य अच्छी तरह शुरू होकर बढ सकते हैं। शासन शक्तिका विरोध रहा तो शुरू हुए कार्य भी बिगड जाते हैं और विनाशको प्राप्त होते हैं। भुवनका धारण केवल जमीनका ही धारण यहां अपेक्षित नहीं है, जमीन तो जहां है वहीं रहेगी। भुवनका धारणका मुख्य अर्थ 'मातृभूमिपर रहनेवाले लोगोंका धारण, पोषण और अभ्युदय।' इसकी साधना प्रजापतिको करनी चाहिये,

विविध कार्य करनेवाला

प्रजापतिर्विश्वकर्मा विमुञ्चतु। वा० य० १२।६१

'प्रजापालक (विश्व-कर्मा) प्रजाजनोंकी उन्नतिके सब कार्य करनेवाला हो, वह प्रजाजनोंको कष्टोंसे मुक्त करें।

प्रजापतिः तपसा वावृधानः। वा० य० २९।११

'प्रजापति तप करके अपनी शक्ति बढाता है।' प्रजापालक जब वह प्रजापालनके कर्म करनेके कष्ट सहन करता है, तब उसका सामर्थ्य बढता है।

'विश्व-कर्मा' का अर्थ 'सब कर्मोंको करनेवाला।' प्रजापतिका मुख्य कार्य प्रजाका पालन और रक्षण करना है। इस पालन और रक्षण संबंधके जितने भी आवश्यक कार्य होंगे, उन सब कार्योंको करना यहां 'विश्व-कर्मा' पदसे बोधित होता है। राष्ट्रपालन संबंधके सब कार्य करनेवाला प्रजापति हो। तथा वह (तपसा वावृधानः) तपसे बढनेवाला अर्थात् अपने प्रजापालनके कर्म करनेमें यदि कष्ट हुए तो उन कष्टोंको सहन करनेवाला। यदि वह इन कष्टोंको नहीं सहेगा, तो उनसे प्रजापालनका कार्य नहीं होगा। इसलिये उसको पालनके सब कर्म करने चाहिये और उनमें होनेवाले कष्ट भी सहन करने चाहिये।

प्रजाका संरक्षण

यानि चकार भुवनस्य यस्पतिः प्रजापतिर्मातरिश्वा प्रजाभ्यः। प्रदिशो यानि वसते दिशश्च तानि मे वर्माणि बहुलानि सन्तु॥

अथर्व १९।२०।२

(भुवनस्य यः पतिः प्रजापतिः) मातृभूमिका पालन करनेवाला जो प्रजापालक है, उसने (प्रजाभ्यः यानि चकार) प्रजाजनोंकी सुरक्षाके लिये जो जो संरक्षणके साधन राष्ट्रमें निर्माण किये हैं, जो (दिशः प्रदिशः यानि वसते) दिशा और उपदिशाओंमें हैं, (तानि वर्माणि मे बहुलानि सन्तु) वे संरक्षणके साधन हम सब प्रजाजनोंके रक्षणके लिये बहुत अर्थात् पर्याप्त हों। वे सब प्रकारके शत्रुओंसे हमारा संरक्षण करें। उनके कारण प्रजाजन सुरक्षित हों और वे राष्ट्रमें शान्तिसे रह सकें।

राष्ट्रपति अपने राष्ट्रमें प्रजाका संरक्षण करनेके लिये अनेक साधन निर्माण करे। कीले बनावे, भूदुर्ग, जलदुर्ग, गिरिदुर्ग, नगरदुर्ग बनावे, उन कीलोंपर शत्रुका नाश करनेके सब साधन रखे। इसके अतिरिक्त नौकादल, वायु दल, सेना, रक्षकोंका दल, उनके सब साधन चारों ओर रहें। तैयार रहें, सज्य रहें। शत्रु आते ही उसका नाश वे करें अथवा उनको दूर करें। ये सब साधन रक्षाकार्यके लिये पर्याप्त हों, न्यून न हों।

राष्ट्रपतिका आधार

यस्मिन्स्तब्ध्वा प्रजापतिर्लोकान्त्सर्वां अधारयत्। स्कंभं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः॥ अथर्व १०।७।७

'जिसमें (स्तब्ध्वा) रहकर प्रजापालक सब लोगोंका धारण करता है, वह उसका आधारस्तंभ कौनसा है? कहो।'

परमेश्वर सर्वाधार है, (क-तमः) वह अत्यंत आनन्द स्वरूप है। उसके आधारपर रहकर राष्ट्रपति सब प्रजाजनोंको धारण करता है। राष्ट्रशासक अपने शासनको परमेश्वरका आधार है वह जाने और ईश्वरके सामने पापी न बने।

'स्कंभ' का अर्थ 'स्तंभ' है। सर्वाधार परमेश्वर ही है। राष्ट्रपति जाने कि सबका आधार स्तंभ परमेश्वर है। यह आधार उसको मिलता है कि जो पवित्र रहता है, सदाचारी रहता है। यह जानकर राष्ट्रपतिको उचित है कि वह पवित्र रहे, सदाचारी रहे। निष्ठापूर्वक प्रजाका पालन करता रहे, उसमें पापभावना न रखे। अपना स्वार्थ साधन करनेके लिये दूसरेका नाश करनेका विचार भी न करे। परमेश्वर पर श्रद्धा रखकर पवित्र भावसे अपना कर्तव्य करता जाय। ईश्वरके आधारको पकड कर, निर्भय होकर प्रजापालक अपना कर्तव्य करता रहे।

ज्ञान तेज बल और संरक्षण प्राप्त करके दीर्घायु बनना

प्रजापतेरावृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च। जरदष्टिः कृतवीर्यो विहायाः सहस्रायुः सुकृतश्चरेयम्॥

अथर्व १७।१।२७

'(प्रजापतेः ब्रह्मणा वर्मणा आवृतः) प्रजापालकके ज्ञान और संरक्षणसे सुरक्षित हुआ हुआ, तथा (कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च) द्रष्टाके तेज और बलसे युक्त होकर मैं (जरदष्टिः) अतिवृद्ध (कृत-वीर्यः) पराक्रमके कार्य करके, (सुकृतः) पुण्यात्मा और (सहस्रायुः) सहस्र आयुवाला होकर (विहायाः चरेयं) सुदृढ शरीरवाला होता हुआ मैं विचरूं।'

(कश्यपः पश्यकः) देखनेवाला, द्रष्टा, दूरदृष्टी, ठीक ठीक देखनेवाला। (सहस्र-आयुः) अतिदीर्घ आयुवाला (विहायाः) बलवान्, सामर्थ्यवान। प्रजापालकके सुप्रबंध से प्रजा ज्ञान तेज और बलसे युक्त होती है, दीर्घ आयु, प्राप्त करती है, कृतकृत्य होती है, उत्तम पुरुषार्थ करती

है और बलशालिनी होकर विश्वमें विचरती है। प्रजापालक अपना प्रजाके पालनका कार्य करके प्रजाकी कहांतक उन्नति करे यह सब इस मंत्रमें दर्शाया है। प्रजापतिके ये कर्तव्य हैं।

हम ऐसे प्रजापालकी प्रजा हों

प्रजापतेः प्रजा अभूम। वा० य० ९।२१;१८।२९

'जो प्रजाका पालन उत्तम रीतिसे करता है उसीकी प्रजा हम लोग बनेंगे।' जो अच्छीतरह पालन नहीं करता उसका शासन हम पर नहीं होगा। इस विषयमें यजुर्वेदके प्रारंभमें ही कहा है कि—

मा वः स्तेन ईशत, मा अघशंसः। वा० य० १।१

'प्रजापर चोरका और पापीका शासन न हो' परंतु जो पूर्वमंत्रमें कही रीतिसे प्रजाका पालन करता है ऐसे प्रजापतिका ही शासन हो। प्रजाजन भी यही कहते हैं कि 'हम ऐसे प्रजापतिकी प्रजा बनेंगे।' हमपर ऐसे ही उत्तम प्रजापतिका राज्यशासन हो। उत्तम राज्यशासनसे प्रजाका आयुष्य और आरोग्य बढे, प्रजाकी पराक्रम करनेकी शक्ति बढे, प्रजा पुण्य कर्म करनेवाली हो, पाप कर्मसे दूर हो, प्रजा उत्तम ज्ञानसंपन्न हो, उत्तम सुरक्षित हो, तेज और प्रभावसे युक्त हो, प्रजामें दिव्यदृष्टीका प्रकाश हो, अदूरदृष्टि न हो। राज्यशासन ऐसा होना चाहिये। ऐसे राज्यशासकोंपर प्रजा प्रेम करती है इस कारण ऐसे शासक का राज्य स्थायी होता है।

प्रजापतिकी पुत्रियाँ

सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने। येना संगच्छा उप मां स शिक्षाच्चारु वदानि पितरः संगतेषु॥ अथर्व ७।१३।१

राजा या राष्ट्रपति कहता है कि "राष्ट्रपतिकी पुत्रियाँ ग्रामसभा और राष्ट्रसमिति ये दो हैं। ये राजाको (संविदाने) सत्यज्ञान देती है और ये (मा अवतां) मेरा संरक्षण करें। हे (पितरः) पितृस्थानीय सदस्यो! (येन संगच्छै) जिस सदस्यके साथ मैं मिलूं (सः मा उप शिक्षात्) वह मुझे उत्तम रीतिसे समझा देवे, राष्ट्रहितकी बातें वह सभासद मुझे समझा देवे। मैं (संगतेषु चारु वदानि) सभाओंमें सुन्दर हितकारी भाषण करूंगा।"

राष्ट्रपति ग्रामसभा और राष्ट्रसमितिका अपनी पुत्रीके समान रक्षण करे, ये दोनों सभाएं राजाका संरक्षण करें। अर्थात् राष्ट्रहितकी आयोजनाओंके विषयमें सत्य ज्ञान देकर राष्ट्रपालकका रक्षण करें। राष्ट्रपालक जिस सदस्यसे मिले वह सदस्य उसको योग्य संमति देवे। इस तरह यह प्रजापालक ग्रामसभा तथा राष्ट्रसमितिकी स्थापना करके राज्य शासन चलावे।

प्रत्येक ग्राममें ग्रामसभा स्थापन की जावे। ग्रामके प्रजाजन ग्रामसभाके सदस्य चुने। वह सभा ग्रामका कार्य करे। ग्रामके कार्यमें शिक्षण, संरक्षण, न्यायदान, आरोग्य, आदिका समावेश रहे। ग्रामके सब कार्य करनेका अधिकार इस ग्रामसभाको रहे।

ग्रामसभाके सदस्य राष्ट्रसमिति अथवा राष्ट्रसंसदके सदस्योंको चुनें। यह राष्ट्रसमिति राष्ट्रका शासन करे। इस राष्ट्रसमितिके सभासद मन्त्रीमंडलका निर्वाचन करें। इस मंत्रीमंडल द्वारा सब राज्यका शासन होता रहे। राष्ट्रसमिति प्रजापतिको चुने और वह राष्ट्रका अध्यक्ष हो।

प्रत्येक ग्रामकी ग्रामसभा ग्रामके कार्य करे और राष्ट्रसमितिकी अनुमतिसे मंत्रीमण्डल राष्ट्रशासनका कार्य करे। राष्ट्रपति अथवा प्रजापति सब कार्यका निरीक्षण करे। जहां न्यूनता हो वह उस न्यूनताको दूर करे और वहां परिपूर्णता करे।

इस तरह यह प्रजापति संस्थासे होनेवाला राज्यशासन है। यहां ग्रामसभासे प्रारंभ होता है और राष्ट्रसमिति तक सब प्रजाके प्रतिनिधि ही कार्य करते हैं। प्रजापति भी प्रजा द्वारा चुना हुआ ही होता है। अर्थात् सब प्रजा ही अपने अधिकारियोंको अधिकारके स्थानोंके लिये नियुक्त करती है जो अयोग्य होगा उसको प्रजा दूर भी करती है। इस विषयमें देखिये—

प्रजापतिका वध

अयोग्य प्रजापतिका वध भी ऋषियोंने किया था, इसका वृत्तान्त ब्राह्मणग्रन्थोंमें है वह अब देखिये—

प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यध्यायत्...तां ऋश्यो भूत्वा रोहितं भूतामभ्यैत्, तं देवा अपश्यन्। न कृतं वै प्रजापतिः करोतीति। ते तमैच्छन्, य एनमारिष्यति, एनमन्योन्य-

स्विन्नाविदंस्तेषां या एव घोरतमास्तन्व आसन्; ता एकधा समभरन्, ताः संभृता एष देवोऽभवत्...तं देवा अब्रुवन्, अयं वै प्रजापतिरकृतं अकः, इमं विध्येति । स तथेत्यब्रवीत्··· तमभ्यायत्याविध्यत्, स विद्ध ऊर्ध्व उदप्रपतत् ।

ऐ० ब्रा० ३।३३

" प्रजापतिने अपनी पुत्रीके ऊपर—ग्रामसभा और राष्ट्र समितिपर बुरी दृष्टीसे देखा। इस प्रजापतिके इस कर्मको देवोंने देखा और उन्होंने कहा कि प्रजापति ऐसा यह कर्म कर रहा है जैसा पहिले किसीने भी नहीं किया था । इसका इस कुकर्म के लिये वध करना चाहिये ऐसा उन्होंने निर्णय किया । इस प्रजापतिका वध अपनेमेंसे कौन करेगा इसका विचार उन्होंने किया । परंतु उसका वध करनेमें समर्थ ऐसा उनमें उनको नहीं मिला। पश्चात् उन्होंने अपनेमेंसे जो बडे बलिष्ठ शरीरवाले थे, उनको इकट्ठा किया और उनको कहा कि इस प्रजापतिका वध करो । ' ठीक है ' ऐसा उन्होंने कहा । वे उस प्रजापतिपर दौडे और उसपर उन्होंने शस्त्र चलाया । प्रजापति घायल हुआ और भूमिपर गिर पडा ।" इस रीतिसे प्रजाके प्रतिनिधियोंने बुरी चालचलनवाले प्रजापतिका वध किया । इसके पश्चात् दूसरा प्रजापति राष्ट्रशासकके स्थानपर बिठलाया गया, इसका सूचक यह मंत्र है—

पिता यत् स्वां दुहितरं अधिष्कन्
क्ष्मया रेतः संजग्मानो निषिंचत् ।
स्वाध्योऽजनयन् ब्रह्म देवाः
वास्तोष्पतिं व्रतपां निरतक्षन् ॥ ऋ० १०।६०।७

" (पिता) प्रजापतिने (स्वां दुहितरं) अपनी पुत्री (जैसी सभा या समिति) पर (अधिष्कन्) जब आक्रमण किया, तब उस (संजग्मानः) संघर्षमें (रेतः निषिंचत्) उसका वीर्यपात हुआ, वह निर्वीर्य बना । उस समय (स्वाध्यः) स्वाध्यायशील (देवाः) ज्ञानियोंने (ब्रह्म) ज्ञानपूर्वक घोषणा की और (व्रतपां) विधानके नियमोंका योग्य पालन करनेवाले (वास्तोः पतिं) मातृभूमिके पालक के स्थानपर—उस प्रजापतिके स्थानपर–नये प्रजापालकको (निरतक्षन्) निर्माण करके बिठला दिया । "

इस तरह नये प्रजापतिको उस पूर्व प्रजापतिके स्थानपर रखा जाता था । यहां " व्रत-पाः " यह पद विशेष ध्यानपूर्वक देखने योग्य है । नियमोंका पालन करनेवाला ' व्रतपा ' कहलाता है । पहिला प्रजापति नियमोंका उल्लंघन करता था, इसलिये उसको हटा दिया और उसके स्थान पर नियमोंका पालन करनेवालेको बिठला दिया ।

वेन राजाकी कथा

दुर्वृत्त राजाको राजगद्दीसे हटाया जाता था इस विषयमें वेन राजाकी कथा देखने योग्य है । अंग राजा था । इसका विवाह यमकन्या सुनीथाके साथ हुआ । इसका पुत्र वेन नामसे प्रसिद्ध था। अंगराजा मरनेपर उसकी गद्दीपर ऋषियोंने वेनको बिठला दिया, क्योंकि वेन उसका बडा पुत्र था ।

वेन बचपनसे ही दुर्वृत्त था । किसीका सुनता न था । उसके दुर्दैवसे एक नास्तिकके सहवाससे उसको वेदधर्मके विरुद्ध आचरण करनेके लिये प्रोत्साहन मिला और उस समयसे वह वेदधर्मका विरोध करने लगा । उसने सब राष्ट्रमें यज्ञयाग बंद किये, वैदिक विधि बंद किये । वेदकी रीतिसे राज्यशासन करना भी बंद किया । अपनी पूजा शुरू की । तथा मनमाना व्यवहार करना प्रारंभ किया ।

यह देखकर ऋषियोंको क्रोध आया । सब ऋषि मिलकर वेन राजाके पास गये और यज्ञ करनेकी बात करने लगे । परंतु वेन राजाने कहा कि यज्ञ मेरे राज्यमें नहीं किये जांयगे । इस विषयमें ऋषियोंने उस राजाको समझानेका बहुत यत्न किया, पर वह सब प्रयत्न असफल ही हुआ ।

अन्तमें मरीची आदि ऋषि क्रोधित हुए और उन सबने मिलकर वेन राजाका वध किया । यह कथा हरिवंश १।५; वायुपुराण २।१; भागवत ४।१४; विष्णुधर्म १।१०८; विष्णुपुराण ४।१३; ब्रह्मवै. ४; मत्स्य १०।१-१० में है ।

पद्मपुराणमें भू. ३६–३८ में लिखा है कि ऋषियोंने उसका वध नहीं किया, परंतु ऋषियोंके क्रोधके भयसे स्वयं वेन राजा राजगद्दी छोडकर भाग गया । कैसा भी हो वेन राजा राजगद्दीसे हटाया गया और ऋषियोंने दूसरा राजा उसके स्थानपर बिठलाया यह सत्य है ।

वेन राजाका वध होनेपर राज्यशासन चलानेके लिये उसके दो पुत्र थे । पहिला पुत्र दुष्ट आचरण करनेवाला था इसलिये उसको बहिष्कृत किया और दूसरा पुत्र पृथु सदाचरणी था, उसको राजगद्दीपर बिठाया ।

वेनका पुत्र पृथु अर्थात् 'वैन्य पृथु' का वर्णन इस तरह मिलता है—

पृथी यद् वां वेन्यः सादनेषु । ऋ. ८।९।१०

'वेन पुत्र पृथीने अश्विदेवोंका स्तवन किया, बुलाया।'

पृथु राजा धार्मिक था और उसका शासन धर्मानुकूल होता था। इसलिये इस भूमिको 'पृथिवी' नाम हुआ इसका वर्णन अथर्ववेदमें भी आया है—

तां मनुष्या उपाह्वयन्तेरावत्येहीति। तस्या मनुर्वैवस्वतो वत्स आसीत् पृथिवी पात्रम्। तां पृथी वैन्योऽधोक् तां कृषिं च सस्यं चाधोक्। अथर्व ८।१०।११

उसको मनुष्योंने बुलाया, हे अन्नवाली आओ। उसका वत्स वैवस्वत मनु था और दोहनकर्ता वैन्य पृथी था। इससे कृषि हुई और धान्य उत्पन्न हुआ।

यह वर्णन आलंकारिक है। पृथु राजाके राज्यशासनमें सब लोगोंको सुख प्राप्त हुआ। यहां वेन राजाको राज्य-गद्दीसे ऋषियोंने हटाया और उसके द्वितीय पुत्रको राज गद्दीपर बिठलाया, क्योंकि वह धार्मिक था। पहिले पुत्रको राज्यसे बाहर कर दिया।

यह भी प्रजापति संस्थाके राज्यशासनका एक नमूना ही है।

इस तरह यह प्रजापति संस्थाके राज्य शासनका स्वरूप है। इसमें निम्नलिखित सूत्र दीखते हैं—

प्रजापति संस्थाके शासनसूत्र

(१) प्रजा मुख्य स्वयंभू है और प्रजाके आधारसे शासक रहते हैं, प्रजाने दी शक्ति प्राप्त करके शासक प्रजा-का पालन करते हैं।

(२) व्यक्ति नाश होनेवाली है और संघ, समाज या जाती (राष्ट्र) अमर है।

(३) समाजके आधारसे व्यक्ति रहती है, इसलिये व्यक्ति को समष्टीकी सेवाके लिये आत्मसमर्पण करना चाहिये।

(४) काल प्रजा उत्पन्न करता है, प्रजाका संघ काल ही बनाता है और काल ही उसपर शासक निर्माण करता है।

(५) प्रजा संघटित होनेपर उसके शासककी आवश्य-कता होती है। बिखरी व्यक्तियोंका शासन नहीं हो सकता।

(६) किसी शासनके अधिकारके स्थानपर किसी शासक की नियुक्ति करनी हो, तो उस कार्यके लिये जो सबसे योग्य हो, उसीकी नियुक्ति करनी चाहिये। योग्यता देखकर योग्य पुरुषको ही अधिकार देना चाहिये।

(७) शिक्षक और शासक ये दोनों ब्रह्मचर्य पालन करके विद्वान हुए होने चाहिये। शमदम संपन्न होने चाहिये। जो शमदम संपन्न न हो उसको कोई शासनाधिकारका स्थान नहीं मिलना चाहिये।

(८) शासनाधिकारी प्रजाके साथ मित्रवत् आचरण करनेवाले, तथा प्रजाजनोंका धारण पोषण करनेवाले हों। प्रजाका सब प्रकारसे कल्याण करनेवाले हों।

(९) शासनाधिकारी सत्यनिष्ठ हों और वे प्रजाके धनों का संरक्षण करें। वे अपने कर्तव्य पालन करनेका सामर्थ्य अपने अन्दर धारण करें।

(१०) शासनाधिकारी प्रजाके शत्रुको दूर करें, प्रजाके दुःखोंको दूर करें, स्वयं पवित्र रहें और प्रजाको पवित्र बनावें।

(११) विवाद उत्पन्न होनेपर सत्य और असत्य पक्षका योग्य निर्णय करें और सत्यको श्रद्धाका विषय बनाकर असत्य को दूर करें।

(१२) प्रत्येकके पास जाकर धन लानेवाला और लाये-धनका योग करनेवाला ऐसे दो करग्रहणके अधिकारी हों और इनपर एक कोषाध्यक्ष हो। ये राष्ट्रके धनका संभाल करें।

(१३) शासन कर्ता लोग राष्ट्रमें प्रजाकी संघटना करके प्रजाका सांघिक बल बढावें।

(१४) राष्ट्रशासनके सुप्रबंधसे प्रजाजनोंका तेज बढे, उनको यश मिले और भरपूर अन्न भी मिले।

(१५) शासक भूमिको अधिक उपजाऊ बना दें जिससे प्रजाको उत्तम अन्न खानेके लिये मिले।

(१६) मातृभूमिमें उत्पन्न होनेवाला अन्न उस भूमिके पुत्रोंको ही मिलना चाहिये। शासक इसका सुयोग्य प्रबंध करें।

(१७) शासनके ३३ कार्यालय हों, उनमें ३३ अधिकारी हों और उनका धारण पोषण राष्ट्रके कोशसे होता रहे। वे संतुष्ट रहें और अपना कार्य उत्तम रीतिसे करें।

(१८) शासन संस्थासे राष्ट्रमें रहनेके लिये घर बनाये जांय और उन घरोंमें जिनको अपने लिये निज घर नहीं ऐसे लोग रहें। इस तरह रहनेके लिये सबको घर मिलें।

(१९) जनताके हितके लिये नहर आदि खोद कर जलका प्रबंध राष्ट्रमें शासनके प्रबंधसे किया जावे।

(२०) राष्ट्रभरमें रमणीय दृश्य बनानेके लिये उद्यान उपवन आदि बनाये जांय।

(२१) व्यापार व्यवहार बढाया जाय, लाभमें हानि करनेवालोंको राज्य प्रबंधसे दूर किया जावे।

(२२) शासक प्रजाके साथ रहनेमें आनन्द माने। वे प्रजाके साथ मिलें, वे प्रजाके सुखदुःख जानें।

(२३) राज्य प्रबंधसे प्रजाजनोंकी उन्नति होती रहे।

(२४) प्रजा और राज्यके प्रबंधकर्ता परस्पर सहानुभूति से बर्तें।

(२५) राज्यशासनके प्रबंधसे नये नये सुन्दर नगर बसाये जांय, वहां रहकर प्रजा अपनी अधिक उन्नति करती रहे।

(२६) राज्य व्यवस्थासे प्रजाका पालन, संरक्षण और संवर्धन होता रहे।

(२७) शासक विलासी न बने, वे तपस्वी हों और प्रजाकी उन्नतिके सब कार्य योग्य रीतिसे करें।

(२८) राष्ट्रभरमें शत्रुसे प्रजाका संरक्षण करनेका उत्तमसे उत्तम प्रबंध हो और राष्ट्रके सब रक्षक सदा सुसज्य रहें।

(२९) शासक परमेश्वर पर विश्वास रखनेवाले हों, क्योंकि वही उनका आदर्श शासक है।

(३०) राज्यशासनकी सुव्यवस्थासे प्रजा दीर्घायु बने, अपमृत्यु दूर हो, सब प्रजा ज्ञानी तेजस्विनी और बलशालिनी बने।

(३१) राज्य प्रबंध द्वारा ग्राममें ग्रामसभा और राष्ट्र में राष्ट्रसमिति स्थापन की जावे और ये सभाएं राष्ट्रशासनका सुयोग्य कार्य करें और करवायें।

(३२) अयोग्य अधिकारीको अधिकारके स्थानसे दूर किया जावे और योग्य अधिकारी उसके स्थान पर नियुक्त हो।

(३३) प्रजाके अभ्युदय और निश्रेयसका साधन करना ही राज्यशासन प्रबंधका मुख्य ध्येय हो।

इस तरह ये ३३ सूत्र राज्यशासनके हैं जो प्रजापति संस्थाका वर्णन करनेवाले पूर्वोक्त मंत्रों द्वारा प्रकट हुए हैं। पाठक इनको देखें।

वेदमें 'प्रजापति' अनेक हैं, मेघ, अग्नि, पर्जन्य, परमेश्वर, सूर्य, वायु आदि अनेक देवता प्रजापति कहके वर्णन किये हैं। इन देवताओंका वर्णन करते हुए उन्हीं मंत्रोंद्वारा राज्यशासनका भी वर्णन होता है, यह बात पूर्वोक्त मंत्रोंमें पाठक देख सकते हैं।

प्र श्न

१ व्यक्ति और संघमें मुख्य कौन और गौण कौन है ?

२ व्यक्ति तथा संघके विषयमें वेदमंत्रोंमें कौनसे वचन किस भावकी सूचना देते हैं।

३ व्यक्तिको समाजकी सेवा क्यों करनी चाहिये ?

४ यज्ञकी उत्पत्ति किस कार्यके लिये हुई है ?

५ काल, प्रजा और प्रजापतिका निर्माण करता है इसका आशय क्या है ?

६ प्रजापालनके कार्यके लिये किस पुरुषको पसंद करना चाहिये और उसकी योग्यता कैसी हो ?

७ आचार्य और प्रजापालक ब्रह्मचारी हों इसका तात्पर्य क्या है ?

८ शासकमें कौनसे गुण होने चाहिये ?

९ न्यायदानके अधिकारी कैसे हों ?

१० राष्ट्रके धनकोशके अधिकारी कौन हो सकते हैं ?

११ राष्ट्रशासक किस तरह राष्ट्रमें बल बढावे ?

१२ मातृभूमिको अधिक उपजाऊ किस तरह बनाया जा सकता है ?

१३ मातृभूमिमें उत्पन्न हुआ धान्य प्रजाजनोंको ही मिले इसका हेतु क्या है ?

१४ राष्ट्रके अधिकारी कितने हैं ? शरीरमें, राष्ट्रमें तथा विश्वमें ये कैसे हैं ?

१५ राष्ट्रशासक किनके लिये घर बनावे और कौन उन घरोंमें रहें ?

१६ राष्ट्रमें जलका प्रबंध कैसा हो ?

१७ मातृभूमिमें रमणीय स्थान बनानेका उद्देश्य क्या है ?

१८ व्यापार-व्यवहारका उद्देश्य क्या है, इसमें हानि करनेवालोंको क्या किया जावे ?

१९ शासक और प्रजा परस्पर मिलजुल कर रहेंगे तो कौनसा लाभ होगा ?

२० राष्ट्रशासक नयी नगरियां बसावें इसका हेतु क्या है ?

२१ राष्ट्रशासकके कौनसे कार्य हैं ?

२२ प्रजाको ज्ञान, तेज, बल और संरक्षण प्राप्त करना चाहिये इसमें कौनसा प्रमाणवचन है ?

२३ प्रजापतिकी पुत्रियां कौनसी हैं ? और उनके कार्य कौनसे हैं ?

२४ प्रजापतिका वध क्यों किया गया। वेन राजाका वध क्यों हुआ ?